Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

नामधारी सम्प्रदाय की संगीत परम्पराः लोक गायन शैलियों के सन्दर्भ में

Manmeet Kaur

Research Scholar, Desh Bhagat University, Mandi Gobindgarh

शोध सार

सिक्ख गुरुओं द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करते हुए अपना समस्त जीवन मानवता एवं संगीत को समर्पित करने वाले समुदाय को नामधारी सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। नामधारी सम्प्रदाय में सिक्ख गुरुओं द्वारा चलाई गई कीर्तन परम्परा को वैसे ही संभाला एवं चलाया जा रहा है जो नामधारी सम्प्रदाय एवं संगीत की परस्पर पूरकता का प्रमाण है। इस सम्प्रदाय में कीर्तन के साथ–साथ संगीत का भी विशेष महत्व है जो इनके लोक–संगीत के पक्ष से सम्बन्धित है। सर्वविदित है कि विभिन्न क्षेत्रों एवं जनजातियों का अपना भिन्न लोक संगीत होता है। इसी तरह नामधारी सम्प्रदाय का भी अपना लोक संगीत है जिसका प्रारम्भ कीर्तन रूप में हुआ। प्रारम्भ में संगीत का स्वरूप लोगों का प्रेम भाव से एकत्रित होकर उच्च स्वर में शब्द गायन करना था जो आगे चलकर भिन्न–भिन्न लोक शैलियों जैसे 'हल्ले के दीवान', 'आसा की वार', जोटियों के शब्द इत्यादि के रूप में प्रचलित हुआ। नामधारी सम्प्रदाय द्वारा सृजित इन लोक गायन शैलियों ने इस सम्प्रदाय को संगीत के क्षेत्र में एक विलक्षण स्वरूप देते हुए संगीत जगत को एक अनमोल विरासत प्रदान की है।

बीज शब्दः नामधारी सम्प्रदाय, लोक गायन शैलियाँ।

भूमिका

नामधारी शब्द आज विश्व विख्यात है। सिक्ख पंथ और विशेष रूप में नामधारी नाम से इस सम्प्रदाय का उद्भव सत्गुरु रामसिंह जी द्वारा भैणी साहिब ज़िला, लुधियाना में 12 अप्रैल 1857 में हुआ। नामधारी शब्द का अर्थ पंजाब कोष में इस प्रकार ग्रहण किया गया है–

''नामधारी गुरु से नाम धारण करने वाला है अर्थात् ईश्वर के नाम को आधार बनाने वाला जिज्ञासु नामधारी है।''

भाई काहन सिंह 'नाभा' के महान कोष में नामधारी शब्द का अर्थ 'नाउधरीक' शब्द मिलता है, जिसके अनुसार– नाम को, गुरु द्वारा धारण करने वाला, गुरु मन्त्र का अभ्यासी। ''नाउधरीक सिक्ख होए, गुरु गुरु लग्गे जपण''। श्री सत्गुरु राम सिंह जी ने अपने सिक्खों में 'नाम सुमिरन' का इतना प्रचार किया कि लोग आपके सिक्खों को 'नामधारी' नाम से पुकारने लगे।

नामधारी ''गुरु सिक्ख परम्परा'' का उत्थान सिक्ख परम्परा के साथ ही हुआ मानते हैं। वे गुरु नानक देव जी को पहले गुरु और गुरु गोबिन्द सिंह जी को दशम गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं। सत्गुरु बालक सिंह जी, सत्गुरु राम सिंह जी, सत्गुरु प्रताप सिंह जी, सत्गुरु जगजीत सिंह जी और सत्गुरु उदैसिंह जी को 'नानक निरंकारी जोत' को प्रज्वलित रखने का अधिकारी मानते हैं।

नामधारी सम्प्रदाय और संगीत की परम्परा एक दूसरे के पूरक हैं। सिक्ख पंथ में भी कीर्तन को प्रमख स्थान दिया है। सिक्ख गुरुओं का संगीत से सीधा सम्बन्ध रहा है। उनके दरबार में रागी, ढाडी या लोक धुनों में कीर्तन करने वाले कीर्तनकार मौजूद रहते थे। नामधारी सम्प्रदाय में सिक्ख गुरूओं द्वारा चलाई हुई कीर्तन

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

परम्परा को उसी प्रकार अपनाया और चलाया जा रहा है। इस सम्प्रदाय में कीर्तन के साथ–साथ संगीत का भी विशेष महत्व है जो नामधारी सम्प्रदाय में लोक संगीत के रूप में जुड़ा है।

नामधारी सम्प्रदाय में संगीत

विभिन्न क्षेत्रों एवं जनजातियों का अपना भिन्न लोक संगीत होता है, जैसे मेवाड़ में कालबेलीया जाति का ''चंग–नृत्य'' भीला का ''गारवी नृत्य'' आदि लोक नृत्य है, उसी प्रकार ''नामधारी सम्प्रदाय'' का भी अपना लोक संगीत है। ''लोक कलाएँ किसी भी राष्ट्र की एक विशेष पहचान होती हैं। इन कलाओं में उस राष्ट्र के जन–जीवन एवं इतिहास का भी ज्ञान होता है।''

वास्तव में नामधारी सम्प्रदाय में संगीत का आरम्भ कीर्तन के रूप में हुआ। आरम्भ में संगीत का स्वरूप लोगों का प्रेम से एकत्रित होकर, ऊँचे स्वरों में शब्द–गायन करना था, जिसे ''हल्ले के दीवान'' कहा जाता है। परन्तु समय के साथ–साथ उनके संगीत में भी परिवर्तन होता गया। नामधारियों के हल्ले के दीवान की कुछ पंक्तियाँ (धाराएँ) जिनसे उनके जीवन के बारे में पता चलता है इस प्रकार हैं–

धाराएँ

1. ''जित्थे वजदे ढोलकियां छैने।
   उह घर कूकियाँ दे।''
2. ''पाके लमीआं गलां दे बिच माला,
   नाम जपो सत्गुरू दा।''

नामधारियों के सभी गुरूजनों का संगीत से प्रेम होने के कारण एवं अपनी सांगीतिक जिज्ञासा को शान्त करने के लिए, इन्होंने संगीत की शिक्षा स्वयं ग्रहण की और अपने शिष्यों को भी दी। नामधारी सम्प्रदाय के गुरूजनों ने कीर्तन के साथ–साथ संगीत को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इस प्रकार नामधारी सम्प्रदाय में आरम्भ से ही संगीत का विशेष स्थान रहा है।

'हल्ले के दीवान' की उत्पत्ति पंजाब के लोक संगीत से ही हुई। सत्गुरु राम सिंह जी ने पंजाब के लोक गीतों की कुछ धुनों के आधार पर गायन एवं ढोलकी–छैनों के सुन्दर आकर्षक संयोग से 'हल्ले के दीवान' की उत्पत्ति की। सरदार नाहर सिंह (एम.ए.) सत्गुरु राम सिंह जी के 1857 ई. से 1863 तक के समय का वर्णन करते हुए कहते हैं– ''समस्त पुरुषों एवं स्त्रियों की संगत में ढोलकी छैनों से सीधे–सादे ग्रामीण स्वरों में गुरूबाणी के शब्द पढ़ने की रीति दिन प्रतिदिन फैलती गई।''

तरन सिंह 'वहिमी' के अनुसार, ''सत्गुरु प्रताप सिंह जी दीवान में ढोलक–छैनों के साथ मीठी–मीठी ''मलवई धारना'' में गाते थे। 'सीधे–सादे ग्रामीण स्वर' एवं 'मलवई धारना' से ज्ञात होता है कि इसकी उत्पत्ति पंजाब के लोक संगीत से हुई। 'नामधारी संगीत' की मुख्य शैली 'हल्ले के दीवान' एवं उसकी उपशैली 'आसा की वार' है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

नामधारी सम्प्रदाय में प्रयुक्त विभिन्न लोक गायन शैलियाँ

हल्ले के दीवान

नामधारी सम्प्रदाय में संगीत को विशेष स्थान 'हल्ले के दीवान' के रूप में मिला। इस दीवान में जत्थेदार खड़ा होकर अपने जत्थे की रहनुमाई करता है। उसका साथ देने के लिए एक या दो ढोलक वादक एवं 15–20 व्यक्ति छैने बजाने वाले होते हैं। जत्थेदार तार सप्तक के स्वरों में धारना गाता है और शेष साथी वही धारना पीछे–पीछे बोलते हैं। जत्थेदार जरूरत के अनुसार बिना किसी वाद्य के, किसी विशेष विषय को लेकर व्याख्या करता है। इसमें कविता, इतिहास या गुरूबाणी के प्रमाण देकर श्रोताओं को बांध कर रखा जाता है। ''हल्ले के दीवान'' विशेष रूप में होला–महल्ला, वैशाखी का मेला, बसंत का मेला एवं अस्सु का मेला आदि के समय सारा दिन चलते हैं। इन्हें 'कूकों के दीवान' भी कहा जाता है।

ढोलकी–छैनों के साथ दीवान लगाने की रीति श्री सत्गुरु राम सिंह जी की देन है। नामधारी सम्प्रदाय के लोगों ने इस शैली को श्रद्धापूर्वक अपनाया। यह नामधारियों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का अटूट अंग बन गई। प्रसिद्ध शायर संतोख सिंह 'सफरी' के अनुसार–

''गौरे हल गए हल्ले दा शब्द सुनके,
ऐसे वार कीते ढोलकी छैनियां ने,
गोले तोपां दे नरकां की अग्ग वरगे,
ठण्डे ठार कीते ढोलकी छैनियां ने।''

श्री जगदीश सिंह 'वरियाम' लिखते हैं कि जब अंग्रेज सरकार ने नामधारियों का प्रचार जबरदस्ती बंद कर दिया, उस समय केवल जिस यंत्र से अंग्रेज़ों का मुकाबला किया गया वह 'ढोलकी' थी।

अंग्रेज़ों द्वारा सत्गुरु राम सिंह जी को काले पानी भेजने के पश्चात् नामधारी संगत सत्गुरु जी के वियोग में बिलखती एवं इनके संगीत पर विरहावस्था के 'करुण रस' ने जाल बिछा लिया। इसकी तस्वीर बाबा चंद सिंह के बारहमाह से स्पष्ट रूप में प्रकट होती है जो सरकारी रिकार्ड के अनुसार 10 अप्रैल 1884 ई. के नामधारी सिक्खों में प्रसिद्ध हो चुकी थी।

''वज्जे ढोलक छैने खडकन,
हल्ले दे शब्द कलेजे रड़कन,
बीबीआं वांग कबूतर फटकन,
करदीआँ निरत पैर नहीं अटकन,
खुल्ले केस गले विच लटकन, शोभा पांवदे।।''

सत्गुरु प्रताप सिंह जी ने भी उस संगीत को संभाल कर रखा, जिसका सामना करने से अंग्रेज़ डरते थे।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

''तरनतारन दीवान में लाठियाँ चली। उस समय अंग्रेज़ों ने कहा कि महंत दीदार सिंह की अंगुलियां तोड़ दें, जिसकी ढोलक लोगों को सब रूकावटों के बाद भी खींच लाती है।''

सत्गुरू प्रताप सिंह जी के समय में एक बार संत निधान सिंह 'आलम' जी ने हिन्दुओं के दुर्गियाना मंदिर अमृतसर में दीवान के समय हजारों लोगों को नृत्य करने लगा दिया अर्थात् मस्त कर दिया। सत्गुरू प्रताप सिंह जी के समय जत्थेदार बंता सिंह के शब्द एवं इन्द्र सिंह की ढोलक की आवाज़ से मुस्लिम लोग भी इस प्रकार एकत्रित हो जाते थे, जैसे 'मक्खियां गुड़ पर'।

सत्गुरू जगजीत सिंह जी ने इस शैली को अपने संगीत में जैसे का तैसा सम्भाल कर रखा। यह हिन्दू, सिक्ख एवं मुस्लिम एकता को कायम रखती है। रागात्मक धार्मिक संगीत केवल गुरबाणी पर आधारित होता है, परन्तु इस प्रणाली में सिक्ख गुरुओं के अतिरिक्त हिन्दू देवता श्री राम एवं श्री कृष्ण के प्रसंग गा कर भी ईश्वर की महिमा का गुण–गान किया जाता है।

सत्गुरु जगजीत सिंह जी ने गुरदीप सिंह, जगदेव सिंह (जग्गा), गुरवेन्द्र सिंह (राणीयां), प्रीतम सिंह (बरनाला), जसपाल सिंह (संत नगर), गुरलाल सिंह इत्यादि जत्थेदार तैयार किए। आपके दरबार में भी श्री कृष्ण–गोपियां, कृष्ण–द्रौपदी, श्री राम भगवान एवं सिक्ख गुरुओं के प्रसंग एक साथ गाए जाते थे। 'हल्ले के दीवान' लगते थे, हल्ले के शब्द पढ़े जाते थे। ढोलकी छैनों की आवाज आसमान तक गूंजती थी। सत्गुरु जी ने 'हल्ले के दीवान' के क्षेत्र का अत्यधिक विकास किया।

वर्तमान समय में सत्गुरु उदै सिंह जी ने इस पुरातन परम्परा को उसी तरह अपने दरबार में प्रचलित रखा है। सत्गुरु उदै सिंह जी ने जत्थेदार निशान सिंह, जत्थेदार कमाल सिंह, सुबा संदीप सिंह, जत्थेदार हरपाल सिंह (पु.पी.), जत्थेदार निशान सिंह (दिल्ली), जत्थेदार प्यारा सिंह, जत्थेदार जसविंदर सिंह (भिंडर), जत्थेदार साधा सिंह (मंडी, हिमाचल) आदि जत्थेदार तैयार किए हैं।

आसा की वार (वारा)

नामधारी सम्प्रदाय में संगीत के स्थान के बारे में हम, 'आसा की वार' के रूप में भी विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। 'आसा की वार' का कीर्तन प्राचीन रागात्मक शैली पर आधारित होता है। परन्तु सत्गुरु प्रताप सिंह जी ने संत ज्ञान सिंह के सहयोग से 'आसा की वार' की एक नई गायन शैली प्रारम्भ की। रागों की सरलता एवं लोक शैली पर आधारित उच्च स्वरों पर गाई जाने वाली इस शैली का नाम 'वारा' पड़ गया। इसके कीर्तन में ढोलकी–छैनों का प्रयोग होता है। इसको हल्ले के दीवान की उपशैली कहा जा सकता है।

सत्गुरु प्रताप सिंह जी के समय में कभी–कभी 'वारा' में दिलरूबा की संगत की जाती थी, परन्तु सत्गुरु जगजीत सिंह जी ने 'आसा की वार' (वारा) में दिलरूबा की संगत आवश्यक कर दी एवं छैने बजाने वालों की संख्या कम कर दी। इस प्रकार करने से शांत रस की उत्पत्ति हुई एवं शब्दों की अधिक स्पष्टता के कारण भावपूर्ण कीर्तन होने लगा। पहले स्वर देने के लिए केवल एक हारमोनियम का प्रयोग किया जाता था परन्तु आजकल 'वारा' में संगत करने के लिए दिलरूबा की संख्या अधिक हो गई है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

भैणी साहिब की 'आसा की वार' प्रचलित गुरमति संगीत की 'आसा की वार' से भिन्न है। इसमें एक से अधिक तालों का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार चार ताल, दीप चन्दी, झपताल आदि। भिन्न–भिन्न तंती वाद्यों जैसे–दिलरूबा, सितार, संतूर के साथ तबला, मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्यों, की संगति होती है। बसंत ऋतु में 'बसंत की वार' गाई जाती है। सत्गुरु जगजीत सिंह जी के समय में भैणी साहिब के एक समागम में 'आसा की वार' की एक तस्वीर इस प्रकार है–

''आज दीवान में पाँच तबले, तीन दिलरूबा, दो सितार, एक सरोद एवं एक हारमोनियम थे। सत्गुरु जी, ठाकुर उदय सिंह, श्री गुरु देव (सरोद), उस्ताद हरभजन सिंह, स. महेन्द्र सिंह अमृतसरी, श्री धर्मवीर, श्री हरपाल जी, श्री चरण सिंह जम्मू, सुखदेव सिंह, शेर सिंह भैणी साहिब में कीर्तन करते रहे। सत्गुरु जी गायन करते समय शब्द एवं राग भी बदलते रहे।''

सत्गुरु उदै सिंह जी ने पूर्व गुरूजनों द्वारा चलाई इस 'आसा की वार' की पुरातन परम्परा को आज बहुत विकसित किया है। आपने गुरमुख सिंह (दिलरूबा)–श्याम सिंह (तबला), ईशर सिंह (तार शहनाई)–इकबाल सिंह (तबला) नए कलाकार जोड़ियां तैयार कीं जो 'आसा की वार' का कीर्तन करते हैं। रागी बलवंत सिंह नामधारी दरबार के प्रमुख कलाकार के रूप में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। सत्गुरु जी के आशीर्वाद से कुछ नन्हें कलाकार भी तैयार हुए है। जिनमें से बसंत सिंह (दिलरूबा), हरनाम सिंह (तबला), रत्न सिंह (दिलरूबा), राजा सिंह (दिलरूबा) के नाम प्रमुख हैं।

जोटियों के शब्द

इस गायन शैली का नामधारी सम्प्रदाय में विशेष स्थान है। इस विधि के द्वारा भी हमें नामधारी सम्प्रदाय में संगीत के स्थान के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। जोटियों के शब्द का आधार गुरबाणी होती है, परन्तु इसका गायन रागों पर आधारित नहीं होता। 'हल्ले के दीवान' के विपरीत इनमें जोश नहीं होता बल्कि धीमी–धीमी ढोलक–छैनों की आवाज एवं मीठी–मीठी सरल धुन में समूह संगत गायन करती है। यह गायन भक्ति एवं शांत रस प्रधान है।

जोटियों के शब्द में सर्वप्रथम मुख्य व्यक्ति एक पंक्ति का उच्चारण करता है, फिर समूह संगत वही पंक्ति उसके पीछे–पीछे गायन करती है। कुलवंत सिंह गरेवाल जोटियों के शब्दों के सम्बन्ध में लिखते हैं–

''संत अतर सिंह मस्तुआणा ने इस पवित्र गायन विधि का अविष्कार किया एवं गुरबाणी के पवित्र अर्थों को लोगों के मन तक पहुँचाया।'' परन्तु इस गायन विधि की रचना संत अतर सिंह जी मस्तुआणा वालों ने नहीं बल्कि सत्गुरु राम सिंह जी ने की। सत्गुरु राम सिंह जी का जन्म 1816 ई. में हुआ जबकि संत अतर सिंह जी का जन्म 1867 ई. में हुआ। जोटियों में शब्द की विधि 1867 से पूर्व से चली आ रही है। सत्गुरु राम सिंह जी के समय में सिक्ख लेखक पंथ रत्न ज्ञानी ज्ञान सिंह, सत्गुरु राम सिंह जी के सिक्खों के बारे में लिखते हैं–

''नर–नारी शब्द आधार पढ़े गुरू केर
ढोलकी बजाये बाँध जोटियाँ अछै सही।'' (पंथ प्रकाश–ज्ञानी ज्ञान सिंह)

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

आज सत्गुरु उदै सिंह जी ने जोटियों के शब्द गायन करने की पुरातन परम्परा को वैसे ही अपने दरबार में प्रचलित रखा है।

कविशरी

पंजाब में कविशरी का सिक्खों के धार्मिक संगीत में विशेष स्थान है। नामधारी सम्प्रदाय में भी इसका विशेष स्थान है। इसके गायन में वाद्यों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसके गायन में दो व्यक्ति खड़े हो कर, दौगाणे की तरह बारी–बारी गायन करते हैं, गायन के पश्चात् तीसरा व्यक्ति प्रसंग की व्याख्या करता है। इसी प्रकार गायन एवं व्याख्या की प्रक्रिया चलती रहती है। कविशरी गायन करने वालों की संख्या कम या अधिक भी हो सकती है। इसके विषय धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सभ्याचारिक भी हो सकते हैं।

नामधारी सम्प्रदाय में कविशरी की प्रथा सत्गुरु प्रताप सिंह जी के समय से चलती आ रही है। सत्गुरु जगजीत सिंह जी ने स्वः कवि जीवन सिंह को जत्थे का सरप्रस्त नियुक्त किया है। स्व. जीवन सिंह के जत्थे के दो अन्य व्यक्ति श्री सुरेन्द्र सिह एवं श्री रवेल सिंह थे, जिनका आज भी नामधारी दरबार में विशेष स्थान है। सत्गुरु जी ने कविशरी को प्रोत्साहित करने के लिए स्व. कवि जीवन सिंह जो 'कवि भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त सत्गुरु प्रताप सिंह जी के समय से चलते आ रहे कविशर सूबा बहाल सिंह के जत्थे को भी उसी प्रकार सरप्रस्ती सौंपी गई एवं पुरातन परम्परा का निर्वाह किया।

मास्टर दर्शन सिंह ने ''सत्गुरु प्रताप सिंह अकैडमी'' में संगीत अध्यापक के रूप में बच्चों को कविशरी गायन की शिक्षा दी। नरेंद्र सिंह (जालखेड़ी) बलबीर सिंह श्री भैणी साहिब इत्यादि कविशर तैयार किए। वर्तमान समय में सत्गुरु उदै सिंह जी ने कविशरी गायकी की परम्परा को आगे बढ़ाया है। संत बलकार सिंह जी ''सत्गुरु प्रताप सिंह अकैडमी'' में कविशरी गायन की शिक्षा दे रहे हैं। श्री भैणी साहिब में कवि गुरलाल सिंह, गुरसेवक सिंह 'ढिल्लो', कविशर जोगा सिंह (भंगुर), मक्खन सिंह, 'मल्लेका', बलविन्दर सिंह इत्यादि कविशर इस गायकी का निरन्तर प्रचार कर रहे हैं।

कव्वाली

सिक्खों के कीर्तन का आरम्भ रबाव एवं मृदंग की संगति से ध्रुपद–धमार शैली से हुआ परन्तु समय परिवर्तन के साथ–साथ आज ख्याल शैली से होता हुआ सुगम संगीत तक आ पहुँचा है। नामधारी सम्प्रदाय में सत्गुरु जगजीत सिंह जी ने कव्वाली का आरम्भ किया, जिससे नामधारी संगीत में एक नवीन गायन शैली जुड़ गई। सिक्खों में इसके पूर्व कव्वाली का गायन नहीं किया जाता था परन्तु सत्गुरु जगजीत सिंह जी ने अपने दरबार में इसे स्थान दिया और संगत ने भी इसे बहुत पसन्द किया। नामधारी सम्प्रदाय में सर्वप्रथम मास्टर दर्शन सिंह जी ने अकैडमी में बच्चों को कव्वाली तैयार करवाई। नामधारी दरबार के कुछ कव्वाली गायक श्री अनूप सिंह, श्री जगदेव सिंह, श्री हरजेन्द्र सिंह, श्री बलबीर सिंह, श्री श्याम सिंह, करम सिंह 'लाडी' (ढोलक वादक) इत्यादि हैं। वर्तमान समय में सत्गुरु उदै सिंह जी कव्वाली गायन की प्रथा निरन्तर आगे बढा रहे हैं।

निष्कर्ष

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नामधारी सम्प्रदाय में संगीत का आरम्भ कीर्तन के रूप में हुआ। प्रारम्भ में संगीत का स्वरूप लोगों का प्रेम से एकत्रित होकर उच्च स्वरों में शब्द गायन करना था, परन्तु समय के साथ–साथ

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

उनके संगीत में भी परिवर्तन होता गया। इस सम्प्रदाय में संगीत का विकास लोक संगीत के रूप में हुआ। इनके लोक संगीत में प्रचलित लोक शैलियां, हल्ले के दीवान, आसा की वार, जोटियों के शब्द, कविशरी एवं कव्वाली इत्यादि से हमें नामधारी सम्प्रदाय के संगीत के स्थान की विशेष जानकारी प्राप्त होती है। नामधारी गुरूजन, लोक शैलियों के विकास के लिए निरन्तर सक्रिय रहे हैं। नामधारियों के वर्तमान गुरु उदै सिंह जी ने संगीत के क्षेत्र को अति विशाल रूप दिया है और आज भी इसके विकास के लिए सतत प्रयासरत हैं।

संदर्भ

सिंह, नाहर. (1872). नामधारी इतिहास (प्रथम भाग). सरदार नाहर सिंह, लुधियाना.
सिंह, अनजान. तारा. (1998). राम वियोगिआ दे बारांमाह. नामधारी दरबार, श्री भैणी साहिब, लुधियाना.
सिंह, आरसी. प्रीतम. (1992). महानूर. नवयुग पब्लिशर्ज़, दिल्ली.
सिंह, अनजान. तारा. (1998). सभहन के सिरमौर. नामधारी दरबार, श्री भैणी साहिब, लुधियाना.
सिंह, गिआनी. गुरदित्त. (1961). मेरा पिंड. साहित प्रकाशन, चण्डीगढ़.
सिंह, वहिमी. तरन. (1974). जस्स जीवन (भाग–3). साधु सिंह किसान रामपुर बुड्डी माड़ी.
सिंह, कवी. प्रीतम. (1988). बीते दीआं पैड़ां (भाग–1). कवि प्रीतम सिंह, साहित प्रकाशन, नई दिल्ली.
संगीत. संगीत कार्यालय हाथरस, सहस्राब्दी अंक, संतोख सिंह सफरी जनवरी–फरवरी 2001.
सत्युग. रमेश नगर, नई दिल्ली, (विशेषांक 2000), पृ. 98
वरियाम. नामधारी प्रिंटर्ज़, लाडोवाली रोड, जालंधर, पृ. 8–10, मई 2002.
विस्माद नाद. जव्वदी टकसाल, लुधियाना, पृ. 80, अक्तूबर 1992.